वामपंथी कुचक्री इतिहासकार इरफ़ान हबीब और रोमिला थापर के नाम खुला पत्र सुर्खियों में

मध्य प्रदेश के राज्य सूचना आयुक्त विजय मनोहर तिवारी ने वामपंथी इतिहासकार इरफान हबीब और रोमिला थापर को एक चिट्ठी लिखी है। इसमें मध्यकाल के मुस्लिम इतिहास को लेकर की गई मिलावट और मनमानी पर कई सवाल खड़े किए गए हैं। इस लंबी चिट्ठी में उन्होंने लिखा है कि आज इतिहास को लेकर भारतीयों में पहले से ज्यादा जागरूकता पैदा हुई है। इंटरनेट ने तथ्यों को उजागर करने में बहुत मदद की है।

आखिर ऐसा क्या सच सामने आ गया है कि एक समय इतिहास लेखन में इरफान हबीब और रोमिला थापर जैसे बड़े प्रतिष्ठित नाम आज आम लोगों के लिए गाली बन गए हैं। कभी सोचें कि लोग क्यों आप पर लानतें भेज रहे हैं? हो सके तो जवाब दें।

पूरी चिट्ठी इस प्रकार है-

आदरणीय इरफान हबीब साहब/ रोमिला थापर मैम,

सादर प्रणाम। मैं साइंस का विद्यार्थी रहा हूँ। मगर बहुत बचपन से ही मेरी दिलचस्पी इतिहास में थी। लेकिन सबसे पास के कॉलेज में इतिहास में एमए की व्यवस्था ही नहीं थी और मैं पढ़ाई के लिए बाहर जा नहीं सकता था, इसलिए गणित में एमएससी करके एक साल कॉलेज में पढ़ाया। फिर लिखने के शौक की वजह से मीडिया में आ गया।

करीब पच्चीस बरस प्रिंट और टीवी में काम किया। इस दरम्यान पाँच साल तक लगातार आठ दफा भारत भर के कोने-कोने में घूमने का भी मौका मिला। इन पच्चीस-तीस सालों में इतिहास ने मेरा पीछा कभी नहीं छोड़ा। स्कूल से कॉलेज तक की अपनी पूरी पढ़ाई में जितनी किताबें नहीं पढ़ी होंगी, उतनी अकेले इतिहास की किताबें पढ़ी होंगी। खासतौर से भारत का मध्यकालीन इतिहास। भारत के 'मध्यकाल' से आप जैसे विद्वानों का आशय जो भी हो, मेरी मुराद लाहौर-दिल्ली पर तुर्कों के कब्ज़े के बाद से शुरू हुए भयावह दौर की है।

मुझे अच्छी तरह याद है कि तीस साल पहले गणित की डिग्री लेते हुए जब इतिहास की किताबों में ताकाझाँकी शुरू की थी, तब इरफान हबीब और रोमिला थापर के नाम बहुत इज़्ज़त से ही सुने और माने

थे। हमने आपको इतिहास लेखन में बहुत ऊँचे दर्जे पर देखा था।

हम नहीं जानते थे कि इतिहास जैसे सच्चे और महसूस किए जाने वाले विषय में भी कोई मिलावट की गुंजाइश हो सकती है। हम सोच भी नहीं सकते थे कि इतिहास में कोई अपनी मनमर्ज़ी कैसे डाल सकता है।

मैं बरसों तक वही पढ़ता रहा, जो आज़ादी के बाद आप जैसे मनीषियों ने स्थापित किया। सल्तनत काल और फिर मुगल काल के शानदार और बहुत विस्तार से दर्ज एक के बाद एक अध्याय। सल्तनत काल के सुल्तानों की बाज़ार नीतियाँ, विदेश नीतियाँ और फिर भारत के निर्माण में मुग़ल काल के बादशाहों के महान योगदान और सब तरह की कलाओं में उनकी दिलचस्पियाँ वगैरह। वह कथानक बहुत ही रूमानी था।

वह इन सात सौ सालों के इतिहास की एक शानदार पैकेजिंग करता था। उसी पैकेजिंग से हिंदी सिनेमा के कल्पनाशील महापुरुषों ने बड़े परदे पर 'मुगले-आजम' और 'जोधा-अकबर' के कारनामे रचे।

चूँकि मुझे इतिहास में एमए की डिग्री नहीं लेनी थी और न ही पीएचडी करके किसी कॉलेज या यूनिवर्सिटी की नौकरी की तमन्ना या जरूरत थी इसलिए मैं एक आज़ाद ख़्याल मुसाफिर की तरह इतिहास में सदियों तक भटका और कई ऐसे लोगों से अलग-अलग सदियों जाकर मिला, जो अपने समय का सच खुद लिख रहे थे।

इस भटकन में एक सिरे को पकड़कर दूसरे सिरे तक गया। एक के बाद दूसरे कोने तक गया। एक सूत्र से दूसरे सूत्र तक गया। मीडिया में बीते ढाई दशक के दौरान कोई साल ऐसा नहीं बीता होगा जब मैं किसी न किसी ब्यौरे को पढ़ते हुए ऐसे ही एक से दूसरे सूत्रों तक नहीं पहुँचा होऊँ। उस खोजी तरीके ने मेरे दिमाग की खिड़कियाँ खोलीं। रोशनदान फड़फड़ाए। दरवाज़े हिल गए। एक अलग ही तरह का मध्यकाल मेरे सामने अपनी सारी सच्चाई के साथ उजागर हुआ।

ऐसा होना तब शुरू हुआ जब मैंने समकालीन इतिहास के मूल स्त्रोतों तक अपनी सीधी पहुँच बनाई। यह काम उसी अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के जरिए हुआ, जहाँ आप इतिहास के एक प्रतिष्ठित आचार्य रहे हैं। मैंने आज़ादी के बाद की लिखी गई इतिहास की किताबों को अपनी लाइब्रेरी की एक अल्मारी में रखा और सीधे मुखातिब हुआ मध्यकाल के मूल लेखकों से।

कुछ के नाम इस प्रकार हैं, गलत हों तो दुरुस्त कीजिएगा, कम हों तो जोड़िएगा-फखरे मुदब्बिर, मिनहाजुद्दीन सिराजुद्दीन जूजजानी, जियाउद्दीन बरनी, सद्रे निजामी, अमीर खुसरो, एसामी, इब्नबतूता, निजामुद्दीन अहमद, फिरिश्ता, मुहम्मद बिहामत खानी, शेख रिजकुल्लाह मुश्ताकी, अल हाजुद्दबीर, सिकंदर बिन मंझू, मीर मुहम्मद मासूम, गुलाम हुसैन सलीम, अहमद यादगार, मुहम्मद कबीर, याहया, ख्वंद मीर, मिर्जा हैदर, मीर अलाउद्दौला, गुलबदन बेगम, जौहर आफताबची, बायजीद ब्यात, शेख अबुल फजल, बाबर और जहाँगीर वगैरह। ज़ाहिर है इनके अलावा और भी कई हैं, जिन्होंने बहादुर शाह ज़फर तक की आँखों देखी लिखी।

इतिहास हमारे यहाँ एक उबाऊ विषय माना जाता रहा है। आम लोगों की कोई रुचि नहीं रही यह पढ़ने में कि बाबर का बेटा हुमायूँ, हुमायूँ का बेटा अकबर, उसका बेटा सलीम, उसका बेटा खुर्रम और उसका बेटा औरंगज़ेब। इसे पढ़ने से मिलना क्या है? गाँव-गाँव में बिखरी और बर्बाद हो रही ऐतिहासिक विरासत के प्रति आम लोगों का नज़रिया बहुत ही बेफिक्री का रहा है। उन्हें कोई परवाह ही नहीं कि ये सब कब और किसने बनाए और कब? और किसने बर्बाद किए, क्यों बर्बाद किए?

गाँव-गाँव में बर्बादी की निशानियाँ टूटे-फूटे बुतखानों और बर्बाद बुतों की शक्ल में मौजूद हैं। मैं जिस शहर के कॉलेज में पढ़ता था, वहाँ नौ सौ साल पहले परमार राजाओं ने एक शानदार मंदिर बनाया था, जिसे बाद के दौर में बहुत बुरी तरह तोड़कर बरबाद किया गया और एक मस्जिदनुमा ढाँचा उस पर खड़ा किया। डेढ़ लाख आबादी के उस शहर में ज़्यादातर बाशिंदे नहीं जानते कि वह सबसे पहले किसने तोड़ा था, कौन लूटकर ले गया था, किसने उसके मलबे से इबादतगाह बनाई?

अलबत्ता प्राचीन बुतखानों की बरबादी को एकमुश्त सबसे बदनाम मुगल औरंगज़ेब के खाते में एकमुश्त डाला जाता रहा है। वहाँ भी पुरातत्व वालों के एक साइन बोर्ड पर आलमगीरी मस्जिद ही लिखा है, जो एक पुराने मंदिर को तोड़कर बनाई गई। वह बरबाद स्मारक उस शहर के एक ज़ख्म की तरह आज भी खड़ा है, जहाँ बहुत कम लोग ही आते हैं। किसी को कोई मतलब नहीं है।

जब मैं समकालीन लेखकों के दस्तावेजी ब्यौरों में गया तो पता चला कि मिनहाजुद्दीन सिराज ने उस मंदिर की ऊँचाई 105 गज ऊँची बताई है, जिसे शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने 1235 के भीषण हमले में तोड़कर बरबाद किया। लेकिन मुझे यह जानकर हैरत हुई कि इतिहास विभाग में नौकरी करने वाले कई प्रोफेसरों को भी इसके बारे में कुछ खास इल्म था नहीं।

जब किसी विषय के प्रति किसी भी देश के अवाम में ऐसी उदासीनता और बेफिक्री होती है तो मिलावट और मनमर्ज़ी उन लोगों के लिए बहुत आसान हो जाती है, जो एक खास नजरिए से अतीत की सच्चाइयों को पेश करना चाहते हैं। उस पर अगर सरकारें भी ऐसा ही चाहने लगें तो यकीनन यह अल्लाह की ही मर्ज़ी मानिए।

मैं अपने मूल विषय पर आता हूँ। बरसों तक इतिहास को एक खास पैटर्न पर पढ़ते हुए हमने अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नीतियों को इस अंदाज़ में पढ़ा जैसे कि दिल्ली के किले में बैठकर हुए फैसलों से भारत का शेयर मार्केट आसमान छूने लगा था और विदेशी निवेश में अचानक उछाल आ गया था, जिसने भारत के विकास के सदियों से बंद दरवाजे हमेशा के लिए खोल दिए थे।

जावेद अख़्तर जैसे फिल्मकार भी ऐसे ही इतिहास के हवाले से खिलजी की बाजार नीतियों के जबर्दस्त मुरीद देखे गए हैं। इतिहास की उन किताबों को पढ़कर कोई भी सुल्तानों और बादशाहों का दीवाना हो जाएगा। जबकि खिलजी के समय अपनी आँखों से सब कुछ देखने वाले लेखकों ने जो बताया है, वह असल इतिहास पूरी तरह गायब है और आपसे बेहतर कौन जानता है कि वह कितना भयावह है।

मसलन बाज़ार नीतियों के कसीदों में दिल्ली में सजे गुलामों के बाजार का कोई ज़िक्र तक नहीं है, जहाँ दस-बीस तनके में वे लड़कियाँ ग़ुलाम बनाकर बेची गईं, जो खिलजी की लुटेरी फौजें लूट के माल में हर

तरफ से ढो-ढोकर लाई जा रही थीं। जियाउद्दीन बरनी ने गुलामों की मंडी के ब्यौरे दिए हैं और ऐसा हो नहीं सकता कि आपकी आँखों के सामने से वह मंजर गुजरा न हो। इसी तरह मोहम्मद बिन तुगलक की नीतियों पर ऐसे चर्चा की गई, जैसे बाकायदा कोई नीति निर्माण जैसी संस्थागत व्यवस्थाएँ आज की तरह संवैधानिक तौर पर काम कर रही थीं। जबकि उस दौर में अपने आसपास तमाम तरह के मसखरों और लुटेरों से घिरे तथाकथित सुलतानों की सनक ही इंसाफ थी।

तुगलक की महान नीतियों के कसीदों में ईद के वे रौनकदार जलसे गायब कर दिए गए, जिनमें इब्नबतूता ने बड़े विस्तार से उन जलसों में नाचने के लिए पेश की गई लड़कियों से मिलवाया है। वे लड़कियाँ और कोई नहीं, हारे हुए हिंदू राज्यों के राजाओं की बेटियाँ थीं, जिन्हें ईद के जलसे में ही तुगलक अपने अमीरों और रिश्तेदारों में बाँट देता था। लुटेरों की उन महफिलों में तमाम आलिम और सूफी भी सरेआम नज़र आते हैं। ऐसा कैसे हो सकता है कि ये गिरोह आपकी निगाहों में आने से रह गए?

मैं अक्सर सोचता हूँ कि सदियों तक सजे रहे उन गुलामों के बाज़ार में बिकी हजारों-लाखों बेबस बच्चियाँ और औरतें कहाँ गई होंगी? वे जिन्हें भी बेची गई होंगी, उनकी भी औलादें हुई होंगी? आज उनकी औलादें और उनकी भी औलादों की औलादें सदियों बाद कहाँ और किस शक्ल में पहचानी जाएँ?

जब मैं यह सोचता हूँ तो आज के आजम-आजमी, जिलानी-गिलानी, इमरान-कामरान, राहत-फरहत, सलीम-जावेद, आमिर-साहिर, माहरुख-शाहरुख, औवेसी-बुखारी, जुल्फिकार-इफ्तखार, तसलीमा-तहमीना, शेरवानी-किरमानी जैसे अनगिनत चेहरे आँखों के सामने घूमने लगते हैं।

बांग्लादेश के इस छोर से लेकर अफगानिस्तान के उस छोर तक इस हरी-भरी आबादी के बेतहाशा फैलाव में नजर आने वाला हरेक चेहरा और तब मुझे लगता है कि मातृपक्ष (Mother's side) से धर्मांतरण का व्याकरण कितना जटिल और अपमानजनक है, जो हमारी अपनी याददाश्तों से गुमशुदा किए बैठे हैं और यह सब नजरअंदाज़ कर हम मुगलों को राष्ट्र निर्माता बताकर प्रसन्न हैं। यह कैसी कयामत है कि कोई खुद को गाली देकर खुश होता रहे!

ऐसे दो-चार नहीं सैकड़ों रुला देने वाले विवरण हैं, जो इतिहास पर लिखी हुई किताबों में पूरी तरह गायब हैं। इन पर लंबी बहस हो सकती है। कई किताबें लिखी जा सकती हैं। खुद ये असल और एकदम ताजे ब्यौरे मोटी-मोटी कई किताबों में रियल टाइम दर्ज हैं। इनमें कोई मिलावट नहीं है। कोई मनमर्जी नहीं है। जो देखा जा रहा था, जो घट रहा था, बिल्कुल वही जस का तस कागजों पर उतार दिया गया है। लेकिन आजादी के बाद के इतिहास लेखन में भारत के मध्यकाल के इतिहास का यह भोगा हुआ सच पूरी तरह गायब है।

इसके उलट हमने ऐसी नकली और मनगढ़ंत अच्छाइयों का महिमामंडन किया, जो दरअसल कहीं थी ही नहीं। भारत के मध्यकाल के इतिहास की किताबें कूड़े में से बिजली बनाने के विलक्षण प्रयासों जैसी हैं और इन प्रयासों का नतीजा यह है कि सत्तर साल बाद कूड़ा अपनी पूरी सड़ांध के साथ सामने है। बिजली की रोशनी आपके ख्यालों और ख्वाबों में ही रोशन है! और मध्यकाल के पहले जिसे एक बिखरा हुआ भारत माना गया, जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कभी था ही नहीं, उसमें एक सबसे कमाल की बात को आप साहेबान में किसी ने गौर करने लायक ही नहीं समझा। गुजरात में सोमनाथ से लेकर

हिमालय में केदारनाथ तक शिव के ज्योतिर्लिंगों की स्थापना और पूजा परंपरा हजारों साल पुरानी है।

किसी मुल्क के इतने बड़े भौगोलिक विस्तार में देवी-देवता और उनकी मूर्तियाँ एक ही तरह से बनाईं और पूजी जा रही थीं। आंध्र प्रदेश में विशाखापत्तनम के पहाड़ी स्तूपों से लेकर अफगानिस्तान के बामियान तक गौतम बुद्ध एक ही रूप में पूजे जा रहे थे, जिनके महान स्मारक इस छोर से उस छोर तक बन रहे थे। यह तो दो हजार साल पीछे की बातें हैं।

मतलब, राजनीतिक रूप से भले ही इतने बड़े भारत में हजार राजघराने राज कर रहे होंगे, मगर उनकी सांस्कृतिक पहचान एक ही थी। वह 'कल्चरल कवर' पूरे विस्तार में भारत का एक शानदार आवरण था, जिसके रहते आपसी राजनीतिक संघर्ष में भी भारत की संस्कृति चारों तरफ एक जैसी ही फलती-फूलती रही थी। यह महत्वपूर्ण बात थी, जिसे आजाद भारत के इतिहास लेखकों ने बिल्कुल ही नजरअंदाज किया। क्या यह अनेदखी अनायास है या एक शरारत जो जानबूझकर की गई ?

अगर भारत के इतिहास को एक किक्रेट मैच के नज़रिए से देखा जाए तो पचास ओवर के टेस्ट मैच में सल्तनत और मुगल काल आखिरी ओवर की गेंदों से ज्यादा हैसियत नहीं रखते। लेकिन इतिहास की कोर्स की किताबों में इन खिलाड़ियों को पूरे 'मैच का मैन ऑफ द मैच' बना दिया गया है। अगर मैच जिताने लायक ऐसा कुछ बेहतरीन होता भी तो कोई समस्या या आपत्ति नहीं थी।

जिन लेखकों के नाम मैंने ऊपर लिखे हैं, उनके लिखे विवरणों से साफ जाहिर है कि सल्तनत और मुगल काल के सुल्तानों और बादशाहों के कारनामे अपने समय के इस्लामी आतंक और अपराधों से भरी बिल्कुल वही दुनिया थी, जो हमने सीरिया और काबुल में इस्लामिक स्टेट और अफगानिस्तान में तालिबानों के रूप में अभी-अभी देखी। इस्लाम के नाम पर भारत भर में वे बिल्कुल वही कर रहे थे, जो वे आज कर रहे हैं। सदियों तक माथा फोड़ने के बावजूद वे भारत का संपूर्ण इस्लामीकरण नहीं कर पाए और एक दिन खुद खत्म हो गए।

तीस साल बाद आज भी मैं इतिहास के विवरणों में जाता रहता हूँ। भारत की यात्राओं में मैं नालंदा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालयों के खंडहरों में भी घूमा हूँ और दूर दक्षिण के विजयनगर साम्राज्य के बर्बाद स्मारकों में भी गया हूँ। इनकी असलियत आपसे बेहतर कौन जानता है कि ये उस दौर में इस्लामी आतंक के शिकार हुए हैं। ऐसे हजारों और हैं।

बामियान के डेढ़ सौ मीटर ऊँचे बुद्ध तभी बने होंगे जब आज का पूरा अफगानिस्तान बौद्ध और हिंदू ही रहा होगा। वे सब हमेशा-हमेशा के लिए बरबाद कर दिए गए। लेकिन आजाद भारत की इतिहास की किताबों में सल्तनत और मुगलकाल के उन कारनामों पर पूरी तरह चादर डालकर लोभान जला दिए गए। माशाअल्लाह, इतिहास पर पड़ी इन चादरों के आसपास आप भी किसी सूफी से कम नहीं लगते।

अगर हिंदी सिनेमा की एक मशहूर फिल्म 'शोले' की नजर से भारत के इतिहास को देखा जाए तो मध्यकाल का इतिहास एक नई तरह की शोले ही है। आप जैसे महान विचारकों की इस रचना में गब्बर सिंह, सांभा और कालिया रामगढ़ के चौतरफा विकास की नीतियाँ बना रहे हैं। रामगढ़ पहली बार उनकी बदौलत ही चमक रहा है। रामगढ़ में विदेशी निवेश बढ़ रहा है और हर युवा के हाथ में काम है।

बाजार नीतियाँ गज़ब ढा रही हैं। शेयर मार्केट आसमान छू रहा है। कारोबारी भी खुश हैं और किसान भी। मगर वीरू रामगढ़ की किसी गुमनाम गली में बसंती की घोड़ी धन्नो को घास खिला रहा है।

रामगढ़ में पसरे सन्नाटे के बीच जय मौलाना साहब का हाथ थामकर मस्जिद की सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं, क्योंकि अज़ान हो रही है। जय ने अपना माऊथ ऑर्गन जेब में खोंसा हुआ है क्योंकि नमाज़ का वक्त है और म्यूजिक हराम है, जिससे मौलाना साहब की इबादत में खलल हो सकता है। ठाकुर के जुल्मो-सितम से निपटने के लिए जननायक गब्बर सिंह ने सूरमा भोपाली की अध्यक्षता में एक जाँच कमेटी बना दी है। बसंती ने गब्बर को राखी भेजी है और गब्बर ने खुश होकर रामगढ़ की आटा चक्की उसके नाम कर दी है। जेलर के गुणों से प्रसन्न मौसी बसंती और जेलर की जन्म कुंडली मिलवा रही हैं। गब्बर ने शिवजी के मंदिर में भंडारा कराया है और जन्मजात बदमाश गाँव के ठाकुर ने दंगे की नीयत से मस्जिद के पास की जमीन पर नाजायज कब्जे करा दिए हैं। आपसे ही पूछता हूँ कि मध्यकाल का इतिहास बिल्कुल ऐसा ही रचा गया एक फरेब नहीं है?

इतिहास की बात है, बहुत दूर तक न जाए, इसलिए इस खत को यहीं समेटता हूँ। मैं याद करता हूँ, तीस साल पहले जब एनसीईआरटी की किताबों में इतिहास को पढ़ना शुरू किया और कॉलेज में चलने वाली कोर्स की किताबों के जरिए भारत के मध्यकाल को पढ़ा तो उस दौर में अखबार में छपने वाले इतिहास संबंधी लेखों में इरफान हबीब और रोमिला थापर को अपने समय के महान प्रज्ञा पुरुषों के रूप में ही पाया।

अब तीस साल बाद मैं एक ऐसे समय में हूँ जब टेक्नालॉजी ने कमाल ही कर दिया है। इंटरनेट की फोर-जी जनरेशन अपने आईफोन पर आज सब कुछ देख सकती है और पढ़ सकती है। दुनिया की किसी भी लाइब्रेरी की किसी भी भाषा और उसके अपने अनुकूल अनुवाद में हर दस्तावेज हाथों पर मौजूद है।

भारत का अतीत आज हर युवा को आकर्षित कर रहा है। वह भले ही किसी भी विषय में पढ़ा हो लेकिन इतिहास में पहले से बहुत ज्यादा दिलचस्पी ले रहा है। वह सच को जानने में उत्सुक है। बिना लागलपेट वाला सच। बिना मिलावट वाला इतिहास का सच, जिसमें न किसी सरकार की मनमर्जी हो और न किसी पंथ की बदनीयत!

इतिहास जानने के लिए उसे एमए की डिग्री और मिलावटी किताबें कतई जरूरी नहीं हैं। भारत के विश्वविद्यालयों के इतिहास विभाग दरअसल इतिहास के ऐसे उजाड़ कब्रिस्तान हैं, जहाँ डिग्री धारी मुर्दा इतिहास के नाम पर फातिहा पढ़ने जाते रहे हैं। उनकी आँखें मध्यकाल के इतिहास में की गई आपराधिक मिलावट को देख ही नहीं पातीं। लेकिन इंटरनेट ने सारी दीवारें गिरा दी हैं। सारे हिजाब हटा दिए हैं। सारी चादरें उड़ा दी हैं और मध्यकाल अपनी तमाम बजबजाती बदसूरती के साथ सबके सामने उघड़कर आ गया है।

जिस इस्लाम के नाम पर दिल्ली पर कब्ज़े के बाद सात सौ सालों तक और सिंध को शामिल करें तो पूरे हज़ार साल तक भारत में जो कुछ घटा है, वह सब दस्तावेजों में ही है। आज के नौजवान को यह सुविधा इन हजार सालों में पहली ही बार मिली है कि वह उसी इस्लाम की मूल अवधारणाओं को सीधा देख ले। कुरान अपने अनुवाद के साथ सबको मुहैया है और हदीसों के सारे संस्करण भी। भारत के लोग

जड़ों में झाँक रहे हैं जनाब।

कभी बहुत इज़्ज़त से याद किए जाने वाले इरफान हबीब और रोमिला थापर आज इतिहास लेखन का ज़िक्र आते ही एक गाली की तरह क्यों हो गए हैं, जिन्होंने उल्टी व्याख्याएँ करके इतिहास को दूषित करने की कोशिश की। वक्त मिले तो कभी विचार कीजिए।

क्यों लोग इतनी लानतें भेज रहे हैं। वामपंथ को अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने की यह दिव्य दृष्टि कहाँ से प्राप्त होती है? मेरे लिए यह भीतर तक दुखी करने वाला विषय इसलिए है क्योंकि मैंने जिस दौर में इतिहास पढ़ना शुरू किया, आप महानुभावों को सबसे योग्य इतिहासकारों के रूप में ही जाना और माना था। ऊँचे कद और लंबे तजुर्बे के ऐसे लोग जिन्होंने भारत के इतिहास पर किताबें लिखीं। यह कितना बड़ा काम था।

आजादी और मजहब की बुनियाद पर मुल्क के बँटवारे के साथ एक नया सफर शुरू कर रहे हजारों साल पुराने मुल्क में इससे बड़ा अहम काम और कोई नहीं था। जो इतिहास लिखा जाने वाला था, आजाद भारत की आने वाली पीढ़ियाँ उसी के जरिए अपने मुल्क के अतीत से रूबरू होने वाली थीं। लेकिन हुआ क्या? आज आप स्वयं को कहाँ पाते हैं?

जनाब, मैं चाहता हूँ कि आप चुप्पी तोड़ें। गिरेबाँ में झाँकें, उठ रहे हर सवाल का जवाब दें। सामने आएँ और मेहरबानी करके हाथापाई न करें। अपने समूह के अन्य इतिहास लेखकों को भी साथ लाएँ। वैसे भी आपको अब पाने के लिए रह ही क्या गया है। पद, प्रतिष्ठा और पुरस्कार से परे हैं आप। न अब और कुछ हासिल होने वाला है और न ही यह कोई छीनकर ले जाएगा!

इतिहास से अगर कोई छेड़छाड़ या मिलावट नहीं हुई है तो आपको खुलकर कहना चाहिए। क्या आपको यह नहीं लगता कि आजादी के बाद अपनाई गई इतिहास लेखन की प्रक्रिया दूषित और दोषपूर्ण थी? क्या आज भी आपको लगता है कि सल्तनत और मुगल काल जैसे कोई कालखंड वास्तविक रूप में वजूद में रहे हैं या दिल्ली पर कब्जे की छीना-झपटी में हुई हिंदुस्तान की बेरहम पिसाई का वह एक कलंकित कालखंड है?

आखिर उस सच्चाई पर चादर डाले रखने की ऐसी भी क्या मजबूरी थी? हमारी ऐसी क्या मजबूरी थी कि हम उन लुटेरे, हमलावरों और हत्यारों को सुल्तान और बादशाह मानकर ऐसे चले कि हमने उन्हें देवताओं के बराबर रख दिया और देवताओं को हाशिए पर भी जगह नहीं मिली?

आप सोचिए आजादी के बाद हमारी तीन पीढ़ियाँ यही मिलावटी झूठ पढ़ते हुए निकली हैं? इसका जरा सा भी अपराध बोध आपको हो तो आपको जवाब देना चाहिए। इस खत का जवाब मुझे नहीं, इस देश की आवाम को दें, जो इतिहास के प्रति पहले से ज्यादा जागी हुई है। सारे फरेब उसके सामने उजागर हैं।

अंत में यह और कहना चाहूँगा कि आज की नौजवान पीढ़ी मध्यकाल के इतिहास को देख और पढ़ रही है तो वह इन ब्यौरों की रोशनी में टेक्नालॉजी के ही ज़रिए आज के सीरिया, इराक, ईरान, यमन, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश और कुछ अफ्रीकी मुल्कों की हर दिन की हलचल को भी देख पा

रही है।

तारीख के जानकार आलिमों के इजहारे-ख्यालात ठीक उसी समय सबके सामने नुमाया है, जब वे अपनी बात कह रहे हैं। अब अगले दिन के अखबार का भी इंतजार बेमानी हो गया है। कुछ भी किसी से छिपा नहीं रह गया है। आज की जनरेशन 360 डिग्री पर सब कुछ अपनी आँखों से देख रही है और अपने दिमाग से सोच और समझ रही है। किसी राय को कायम करने के लिए अब मिलावटी और बनावटी बातों की जरूरत नहीं रह गई है।

ईश्वर आपको अच्छी सेहत और लंबी उम्र दे। ताकि सत्तर साल का इतिहास के कोर्स का बिगाड़ा हुआ हाजमा आप अपनी आँखों से सुधरता हुआ भी देख सकें। हमें यह भी मान लेना चाहिए कि आखिरकार ऊपरवाला सारे हिसाब अपने बंदों के सामने ही बराबर कर देता है!

बहुत शुक्रिया।

(विजय मनोहर तिवारी)

राज्य सूचना आयुक्त, मध्यप्रदेश

साभार- https://dopolitics.in/ से